भारतीय लोक नृत्यों का महत्वपूर्ण रूप लावणी नृत्य

डॉ. श्रुति होड़ा*

भारतीय संस्कृति की नीव है लोक संस्कृति के चतुरंग है– साहित्य, संगीत, चित्रकला तथा नृत्यकला मानव और इन कलाओं का संबंध अनादि काल से चला आ रहा है। संस्कृति के चतुरंग में नृत्यकला को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है किसी भी अंचल की संस्कृति को समझने के लिए सर्वप्रथम उस अंचल की लोक संस्कृति को जानना होगा। यूँ तो लोक कलाएं बहुत सी है जैसे हस्तकला, मूर्तिकला, वास्तुकला तथा शिल्पकला इत्यादि लेकिन इन सब कलाओं से उस प्रदेश की सभ्यता एवं संस्कृति का मूक चित्रण देखने को मिलता है। इन सब कलाओं में से लोकगीत एवं नृत्यकला ही ऐसी है जो स्वर अभिनय और अंग संचालन के माध्यम से सभ्यता एवं संस्कृति का संजीव चित्रण प्रस्तुत करती है एवं दूसरों के मनोरजन का एकमात्र साधन भी है।

जब कोई परिस्थिति किसी व्यक्ति विशेष को बिना किसे शास्त्राधारित नियमों के नृत्य करने को प्रेरित कर दे तो वह परिस्थिति लोकनृत्य को जन्म देती है। लोकनृत्यों के माध्यम से प्रान्त की छवि सहज ही दिखलाई पड़ती है। किसी प्रान्त की सभ्यता संस्कृति, त्यौहार आदि को जानने के लिए उस प्रान्त के लोकनृत्य से काफी सहायता मिल सकती है क्योंकि लोकनृत्यों में भाषा तथा वेशभूषा दोनों ही विधमान रहते है।

हमारे देश में लोकनृत्य की परम्परा अनादि है। नृत्य एवं जीवन छन्द है एक लय है जिसमें बंधकर सम्पूर्ण सृष्टि गतिमान है। जीवन के एक–एक क्षण से नृत्य जुड़ा हुआ है और यह मान सभ्यता की अभिन्न कड़ी है। लोकनृत्य की सब से बड़ी विशेषता है कि इसमें अधिकांशतः गायन, वादन तथा नृत्य साथ में हुआ करते है। मानव जब अन्तरात्मा से प्रसन्न होता है तो उस प्रसन्नता में सर्वप्रथम नृत्य ही करता है फिर तालियाँ बजाता है और गाने लगता है तात्पर्य यह किसी विशिष्ट समाज या प्रान्त के लोगों के ह्रदयगत भावों तथा विचारों का सही परिचय प्राप्त करने के लिए लोकनृत्य से बढकर और कोई साधन नहीं है। गायन–वादन के तो सैंकड़ो अवसर होते है अर्थात गायन वादन सुख तथा दुख दोनों में किया जा सकता है परन्तु नृत्य केवल मात्र प्रसन्नता का प्रतीक है।

***Associate Professor P.G.G.C.G, Sec-11 Chandigarh.**

भारत वर्ष का प्रत्येक प्रान्त लोक नृत्य का धनी है। बंगाल का 'बाऊल', राजस्थान का घूमर', बुन्देलखण्ड का बुरेदी' हिमाचल का 'धमाल' पंजाब का भांगड़ा, बिहार को द्धौ'' गुजरात का गरबा, उड़ीसा का कर्मा, केरल का मोहीनी अट्टम,' मणीपुर का 'लाईहरोवा', आन्ध्रप्रदेश का यक्षगान इत्यादि इसके सशक्त उदाहरण है।

इन में महाराष्ट्र का भी अतुलनीय योगदान है। महाराष्ट्र में विभिन्न प्रकार के लोकनृत्यों का प्रचलन है जैसे देवी को प्रसन्न करने के लिए गोंधला नृत्य, विवाह, आयोजन में होने वाले मंगलगौर पूजन के नृत्य इत्यादि। इन नृत्यों में एक ऐसा नृत्य है जिसे महाराष्ट्र का ही प्रयाय कहा जा सकता है। यह नृत्य है– 'लावणी'' ।

लावणी संगीत की एक विधा है जो प्रमुख रूप से भारतीय राज्य महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। लावणी महाराष्ट्र राज्य की लोक नाट्य शैली तमाशा का अभिन्न अंग है। आज इसे महाराष्ट्र के सबसे लोकप्रिय और प्रसिद्ध लोक नृत्य शैली के रूप में माना जाता है। लावणी नृत्य वीरता, प्रेम, भक्ति और दुख जैसी भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए यह शैली उपयुक्त है। संगीत, कविता, नृत्य और नाट्य सभी मिलकर लावणी बनाते है। इन का समिश्रण इतना बारीक होता है कि इनको अलग कर पाना लगभग असम्भव है। एक परम्परा के अनुसार शब्द लावणी शब्द लावण्या जो सुन्दरता अर्थ से ली गई है। अतः यू भी कह सकते है सौन्दर्यानुभूति लास्य कला का दर्शन कराने वाला लावणी महाराष्ट्र का अत्याधिक लोकप्रिय नृत्य है। लास्य रस का अर्थ ही है श्रृंगार का परिपोषक।

लावणी जो कि गीत, नृत्य तथा अभिनय का संगम है उसे लावणी श्रृंगार की खान तथा महाराष्ट्र की शान कहे तो अतियुक्ति न होगी। लावणी के उत्पति के विषय में दो स्वतन्त्र विचार सामने आते हैं। लावणी का अविष्कार सम्भवतः संतों की वाणी तथा बाल क्रीड़ाओं को मिलाकर दी गई है बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी से महाराष्ट्र में ही नहीं वरण सम्पूर्ण भारतवर्ष में जो अध्यात्मिक क्रांति हुई तथा उस क्रांति में कई सन्तों का उदय हुआ। पश्चिम बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, कर्नाटक के पुरन्दरदास, संतमीरा बाई, कबीर दास, सूरदास, तुलसीदास, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव तुक्काराम, एक नाथ, नरहरि जैसे अनेक सन्त हुए। सन्तों का यह कार्यकाल 17वीं शताब्दी तक था। उसके बाद 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उन सन्तों की वाणी को लेकर उसमें श्रृंगार रस से कुछ रचना हुई जिसमें प्रभाकर, रामजोशी, सगनभाऊ, हैबती, पटठेबापुराव, भाऊफक्कड़, अर्जुना वाद्योलीकर, हरिवडगावकर दगडुबोअ आदि तमाशा कलावन्त रचनाकार हुए, इन रचनाओं में भक्तिरस, वीरस, वात्सल्य रस तथा श्रृंगार रस प्रधान थे।

यह माना जाता है कि नृत्य अभिव्यक्ति का सबसे अच्छा माध्यम होते हैं। ऐसे ही किसी राज्य की संस्कृति से रूबरू होने के लिए वहाँ की लोकनृत्य कलाओं को जानना सबसे अच्छा रहता है। वॉलीवुड में लावणी नृत्य इतना अधिक प्रसिद्ध है कि हिन्दी फिल्मों में अनेकों गाने इस पर फिल्माए गए हैं।

माना जाता है कि इस नृत्य कला का आरम्भ मन्दिरों से हुआ है जहाँ देवताओं को प्रसन्न करने में नृत्य के साथ–साथ पारम्परिक गीत भी गाए जाते हैं। गीत का विषय धर्म से लेकर प्रेम रस आदि तक कुछ भी हो सकता है लेकिन इस नृत्य कला में अधिकतर गीत भक्ति, प्रेम और वियोग के ही होते हैं। चंग नामक ताल वाद्य बजा–बजाकर कई लोग मिलकर या अकेला आदमी लावणी गाते हैं और कहरवा ताल का प्रयोग किया जाता है। लावणी नृत्य दो प्रकार का होता है–

1. निर्गुणी लावणी
2. श्रृंगारी लावणी

निर्गुणी लावणी में जहाँ अध्यात्म की ओर झुकाव होता है वही श्रृंगारी लावणी में श्रृंगार रस में डूबा होता है लावणी में श्रृंगार रस ही सर्वप्रधान होता है जिस प्रकार बिना नमक के भोजन नीरस लगता है उसी प्रकार बिना श्रृंगार रस के लावणी। संत साहित्य काल के बाद के काल को महाराष्ट्र के लावणी का उदय काल माना जाता है।

महाराजा शिवाजी के काल के बाद के मराठा सरदार भौंसले सरदारों ने लावणी नृत्य को अधिक प्रोत्साहन दिया। लावणी के मुख्यतः तीन प्रकार होते हैं नृत्य प्रधान लावणी, गान प्रधान लावणी तथा अदाकारी प्रधान लावणी। प्रारम्भ में लावणी गान स्वरूप में प्रचलित थी उसके बाद नृत्य तथा तमाशा लावणी भी प्रचलित हुए।

लावणी के गीत श्रृंगारिक होते हैं प्रस्तुतीकरण में श्रृंगारिक हाव–भाव को प्राधान्य दिया जाता है। लावणी नृत्य को समूह में प्रस्तुत करते हैं जिसमें एक मुख्य अदाकारा के साथ कम से कम चार साथी कलाकार होते हैं। इस नृत्य के संगत के लिए टुणटुण, ढोलकी एवं हारमोनियम वाद्य का प्रयोग किया जाता है, नृत्य के दौरान नृतक के घुंघरूओं एवं ढोलकी की जुगलबन्दी नृत्य का महत्वपूर्ण अंग है। लावणी के समान एक लोकनाट्रू का प्रकार है जिसे तमाशा कहते हैं। गीत रचनाओं के लिए कृष्ण गोपियों के श्रृंगारिक प्रसंग तथा ग्रामीण लोक जीवन के देवर–भाभी जैसे रिश्तों के प्रसंगों का प्रयोग होता है।

लावणी का इतिहास मराठा सरदारों से लेकर वर्तमान समय मे भी महाराष्ट्र की परम्परा में विद्यमान है। मराठा सरदारों के पतन के पश्चात् लावणी का राजश्रय समाप्त हो गया।

आज लावणी आम महाराष्ट्री संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है लावणी की महाराष्ट्र की संस्कृति की निरंतरता बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका है। लावणी नृत्य में पारंपरिक मराठी पोषाक एवं मराठी जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। लावणी नृत्य की पोषाक 16 हाथ की साड़ी जिसे नेवारी की साड़ी कहते हैं एवं नाक में नथ पहनते हैं। लावणी नृत्य के माध्यम से महाराष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास का आंकलन किया जा सकता है। वर्तमान समय में लावणीक प्रमुख नर्तकियां लक्ष्मी बाई कोल्हापूरकर, मधुकांबीकर, राजश्रीनगर कर छाया खुंटेगांवकर, गुलाब बाई, संगमनेरकर इत्यादि मुख्य रूप से इस विद्या को प्रोत्साहन दे रही है।